ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-1* Issue-8* November- 2016
Anthology : The Research

प्राचीन भारत में स्त्री के सम्पत्ति–सम्बन्धी अधिकार : एक विश्लेषण

जितेन्द्र सिंह नौलखा
असिस्टेण्ट प्रोफेसर,
प्राचीन इतिहास विभाग,
के0 एन0 पी0 जी0 कॉलेज,
ज्ञानपुर, भदोही,
(उ0प्र0)

विनोद कुमार
शोध छात्र,
प्राचीन इतिहास विभाग,
के0 एन0 पी0 जी0 कॉलेज,
ज्ञानपुर, भदोही,
(उ0प्र0)

सारांश

स्त्रियों की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखकर हिन्दू समाज में उनका सम्पन्ति–विषयक अधिकार स्वीकार किया गया है तथा उन विशेष परिस्थितियों का भी विश्लेषण किया गया है जिनके कारण सम्पन्ति में वे अपना हिस्सा प्राप्त करती थी। परिवार में वह पुत्र से किसी प्रकार कम नहीं समझी जाती रहीं। दत्तक पुत्र से हमेशा श्रेष्ठ ही समझी गयीं। अपने भाई के न रहने पर वह अपने पिता की सम्पत्ति की उत्तराधिकारी मानी ही गयीं। प्राचीन की अपेक्षा पूर्व मध्यकालीन भाष्यकार और शास्त्रकार इस सम्बध में अधिक तर्कशील और उदार दृष्टिकोण रखने वाले थे, जिन्होंने नारी के सम्पत्ति के अधिकारों को अत्यंत सहज भाव से स्वीकार किया है।

मुख्य शब्द : प्राचीन भारत, स्त्री, अधिकार, स्त्रीधन, वैदिक साहित्य,धर्मशास्त्रकार।

प्रस्तावना

अत्यंत प्राचीन काल में पत्नी को चल–सम्पत्ति समझा जाता था, अतः उसके स्वयं संपत्ति की स्वामिनी होने का प्रश्न नहीं उठता। वैदिक काल में स्त्रियों को उपहार रूप में दिया जाता था।[1] महाभारत में भी धृतराष्ट्र कृष्ण का आदर करने के लिए एक सौ दासिया देने को उद्धत हो जाते है।[2] पति को पत्नी का पूर्ण रूप से स्वामी समझा जाता था। ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि पति अपनी पत्नी को जुए में दांव पर लगा सकता था। इसी आधार पर हरिश्चंद्र अपनी पत्नी शैव्या को बेचने को तैयार हो गए। युधिष्ठिर ने जब जुए में द्रोपदी को दांव पर लगाया था द्रोपदी पति के इस अधिकार के विषय में शंका नहीं करती वह केवल यह कहती है कि जब युधिष्ठिर ने ऐसा किया उस समय क्या वे स्वतंत्र व्यक्ति थे। किन्तु जिस समय युधिष्ठिर द्रौपदी को दांव पर लगाने लगे तो सभासदों ने उनके इस कार्य अनुमोदन नहीं किया। इसका यह अर्थ है कि सिद्धान्त रूप से पत्नी पर पति का पूर्ण स्वामित्य होता था किन्तु समाज–पति–के इस अधिकार को पूर्णतया स्वीकार नहीं करता था।

वैदिक काल से ही पति और पत्नी दोनों को प्रकार की संपत्ति का संयुक्त स्वामी समझा जाता था। पति को विवाह के समय प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी कि वह पत्नी के आर्थिक अधिकारों की अवहेलना नहीं करेगा। आपस्तंब के अनुसार परिवार की संपत्ति के संयुक्त स्वामित्व का यह अर्थ है कि पति की अनुपस्थिति में पत्नी विचार के लिए आवश्यक व्यय कर सकती थी।[3] मनु के अनुसार पति को अपनी पत्नी का भरण–पोषण करना चाहिए चाहे परिवार को कोई संपत्ति न हो और उसे ऐसे कार्य भी करने पड़े जो उसके वर्ण के लिए उपयुक्त न हो। याज्ञवल्क्य के अनुसार के अनुसार यदि पति अनुचित रूप से आज्ञाकारिणी, कुशल, वीर, पुत्रों को जन्म देने वाली और मधुर भाषिणी पत्नी से विवाह विच्छेद कर ले तो पति की संपत्ति का तिहाई भाग मिलना चाहिए। किन्तु समाज ने स्त्री के इस अधिकार को स्वीकार नहीं किया। अचल संपत्ति में से कोई भाग नहीं दिया गया। अचल संपत्ति में से कोई भाग नहीं दिया गया। यदि कोई व्यक्ति किसी स्त्री से बलात्कार कर लेता तो भी उसके पति को उसका भरण–पोषण करना पड़ता था। प्रारंभिक स्मृतिकारों ने अपना यह अधिकार प्राप्त करने के लिए पत्नी को न्यायालय में जाने की अनुमति नहीं दी थी किन्तु विज्ञानेश्वर के अनुसार यदि कोई पति अपनी गुणवती पत्नी को छोड़ दें, या जानबूझ कर उसकी संपत्ति का दुरूपयोग करे या उसे वापस न दे तो पत्नी न्यायालय में जाकर अपने दुःखों को दूर करा सकती थी। किन्तु विज्ञानेश्वर के अनुसार भी बिना पति की अनुमति के पत्नी को धन व्यय करने का अधिकार नहीं था। हिन्दू धर्मशास्त्रकारों ने पत्नी के भरण–पोषण के लिए उस दशा में कोई उचित व्यवस्था नहीं की जबकि उसका पति अपनी पूरी कमायी व्यर्थ गवां दे।

जहां तक आभूषण, वस्त्र आदि चल संपत्ति का प्रयन है, बहुत प्राचीन काल से ही स्त्री का उस पर पूर्ण स्वामित्व समझा जाता था। इसे स्मृतकारों ने स्त्री धन कहा है। इसके मूल उस उपहार में है जो माता–पिता विवाह के समय अपनी पुत्री को देते थे। आपस्तंब धर्मसूत्र से ज्ञात होता है कि कुछ विद्वानों का मत था कि आभूषण और संबंधियों से प्राप्त धन स्त्री का होता है। किन्तु आपस्तंब स्वयं इस मत के समर्थक न थे। कौटिल्य के अनुसार आजीविका और वस्त्र आभूषणों को स्त्री धन कहते हैं। आजीविका अधिक से अधिक दो हजार पण होनी चाहिए।[4] स्मृतिलेखकों के अनुसार आसुर विवाह के द्वारा विवाहित पत्नी की मृत्यु के बाद यदि उसकी सन्तान न हो तो उसका स्त्री धन उसके भाई या माता–पिता को मिलना चाहिए।[5] स्त्री साधारणतया इस उपहार में प्राप्त धन राशि को अपने लिए आभूषण या अपने परिवार के लिए बर्तन और फर्नीचर आदि खरीदने में व्यय करती थी। माता–पिता से प्राप्त उपहार की वह पूर्ण रूप से स्वामिनी होती थी।

मनु के अनुसार पत्नी की अपनी निजी कोई संपत्ति नहीं होती। उसकी संतान संपत्ति उसके पति की होती है। किन्तु बौधयान और मनु दोनों के अनुसार पत्नी का स्त्री धन पर पूर्ण स्वामित्व होता है। मनु के अनुसार स्त्री धन में वे सब उपहार सम्मिलित होते हैं जो माता–पिता या भाई किसी भी समय दिए हों, वे उपहार जो किसी अन्य पुरूष ने भी विवाह के समय वधू को दिए हों और वे उपहार जो पति ने विवाह के बाद अपने प्रेम के प्रतीक के रूप में उसे दिए हों। विष्णु ने स्त्री धन की परिभाषा में तीन नए वर्ग जोड़ दिए अर्थात् 1 पुत्र द्वारा दिए हुए उपहार, 2 किसी अन्य संबंधी द्वारा दिए उपहार तथा 3 पति के दूसरी स्त्री से विवाह करने पर दी जाने वाली क्षतिपूर्ति। स्त्री धन में स्त्री द्वारा कमाई हुई धनराशि सम्मिलित नहीं की जाती थी क्योंकि धर्मशास्त्रकारों का मत था कि पति पत्नी दोनों को आय परिवार पर खर्च की जानी चाहिए। कात्यायन के अनुसार स्त्री धन में अचल संपत्ति शामिल नहीं की जा सकती है। किन्तु बृहस्पति के अनुसार स्त्री धन में भूमि भाग भी सम्मिलित किया जा सकता था।

स्त्री धन को खर्च करने के विषय में धर्मशास्त्रकारों के भिन्न–भिन्न मत हैं। मनु के अनुसार स्त्री को अपना धन भी बिना पति की अनुमति के खर्च नहीं करना चाहिए। बाद के धर्मशास्त्रकारों ने स्त्री धन को दों वर्गों में बांटा है। सैदायिक और असौदायिक। सौदायिक स्त्री धन में माता, पिता, पति और अन्य संबंधियों से दिए हुए उपहारों की गणना की गयी है। 'असौदायिक' स्त्री धन में स्त्री की अन्य चल–संपत्ति की गणना की गयी है। स्त्रियों को सौदायिक स्त्री धन को स्वयं खर्च करने का पूर्ण अधिकार था किन्तु असौदायिक स्त्री धन की आय मात्र का उपयोग स्त्रियां केवल अपने जीवन में कर सकती थी। उसे किसी को देने या बेचने का अधिकार उन्हें था।[6]

यदि कोई स्त्री बिना संतान के मर जाए और उसका विवाह आसुर, राक्षस और अवैध प्रकार से हुआ हो तो उसका स्त्री धन उसके भाई या माता–पिता को वापिस मिलता था।[7] संतान होने पर अधिकतर धर्मशास्त्रों के अनुसार स्त्री धन पुत्री को मिलना चाहिए। उनमें भी विवाहित पुत्रियों को अपेक्षा अविवाहित पुत्रियों का माता के स्त्री धन पर अधिक अधिकार समझा जाता था।[8] मनु के अनुसार स्त्री धन पुत्रों और पुत्रियों दोनों को दिया जाए।[9]

उद्देश्य

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जैसे–तैसे समय बीतता गया धर्मशास्त्रकारों ने स्त्री धन में स्त्री को प्राप्त होने वाली सभी धन–राशियों और संपत्ति को सम्मिलित कर लिया। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीन भारत में स्मृतिकारों का दृष्टिकोण स्त्रियों को आर्थिक अधिकार देने के विषय में सहानुभूतिपूर्ण था। वैदिक साहित्य में अनेक ऐसे प्रसंग हैं जिनसे ज्ञात होता है कि स्त्रियों को दाय का कोई अधिकार न था। पुत्री को पैतृक संपत्ति में से कोई भाग नहीं मिलता था। इसके विपरीत पिता को बहुधा पुत्री के विवाह में वर से धन प्राप्त होता था। पुत्री को पिता, माता, भाई या पति से केवल उपहार के रूप में ही आभूषण, वस्त्र आदि प्राप्त होते थे। यदि किसी कन्या का भाई नहीं होता था, उसी दशा में उसे पिता की संपत्ति मिलती थी क्योंकि वह अपने पुत्र के द्वारा श्राद्ध आदि करा सकती थी।[10] कभी–कभी पिता धेवतों में से एक को गोद भी ले लेता था जिससे कि उसका वंश चलता रहे। 400ई0पू0 तक बिना भाई वाली कन्या को पिता की संपत्ति मिलती थी यह बौद्ध साहित्य से स्पष्ट है 'थेरी–गाथा' में सुंदरी नामक कन्या कीमाता उसे भिक्षुणी होने से रोकती है और कहती है कि वह पिता की संपत्ति की उत्तराधिकारिणी है क्योंकि उसका कोई नहीं है उसका पिता भिक्षु हो गया है।

आपस्तंब केवल उसी दशा में पुत्री को पिता की संपत्ति की उत्तराधिकारिणी मानते है जब उसका कोई सपिंड उत्तराधिकारी न हो। ऐसा बहुत कम होता था क्योंकि पिता की सात पीढ़ियों में कोई–न–कोई पुरूष उत्तराधिकारी मिल ही जाता था। वशिष्ठ[11], गौतम और मनु ने भी पुत्री को पिता की संपत्ति की उत्तराधिकारिणी नहीं माना है किन्तु महाभारत के अनुसार भाई न होने पर पिता की संपत्ति कन्या को मिलनी चाहिए। उसे कम–से–कम पिता की संपत्ति की उत्तराधिकारिणी मानते हैं।[12] कौटिल्य भी पुत्री को पिता की संपत्ति का उत्तराधिकारिणी माना जाना चाहिए। बृहस्पति और नारद का भी यहीं मत है। 193 500 ई0 के बाद के धर्मशास्त्रकारों ने याज्ञवल्क्य, बृहस्पति और नारद के मत को ही स्वीकार किया। कात्यायन के अनुसार पुत्री को उसी समय तक दाय भाग मिलना चाहिए जब तक वह अविवाहित रहे किन्तु समाज ने कात्यायन के मत को नहीं अपनाया। शुक्र के अनुसार यदि पिता अपने जीवन–काल में संपत्ति का बंटवारा करे तो उसे निम्नलिखित अनुपात में संपत्ति का विभाजन करना चाहिए–पत्नी को एक भाग, प्रत्येक पुत्र को एक भाग और प्रत्येक पुत्री को आधा भाग।

हिन्दू समाज में साधारणतया भाई के जीवित रहते कन्या को उत्तराधिकारिणी नहीं माना जाता था। कौटिल्य का भी यही मता था। केवल शुक्र का विचार था कि भाइयों के साथ बहिन को भी पिता की संपत्ति का

कुछ भाग मिलना चाहिए किन्तु सभी धर्मशास्त्रकारों के अनुसार भाई पर बहिन के विवाह का व्यय करने का पूरा उत्तरदायित्व समझा जाता था। याज्ञवल्क्य के अनुसार भाई को अपने दाय का चौथा भाग बहिन के विवाह पर खर्च करना चाहिए।[13] इसी प्रकार के विचार बाद के धर्मशास्त्रकारों ने व्यक्त किए हैं।[14] वैदिक काल में नियोग की प्रथा विद्यापन थी अतः ऐसी बहुत कम विधवा होंगी जिन के पुत्र न हों, अतः उन्हें संपत्ति में कोई अधिकार नहीं दिया गया। अपस्तंब, बौधायन और मनु ने भी विधवा को दाय का कोई भी भाग नहीं दिया।

कौटिल्य ने विधवा के निर्वाह के लिए आवश्यक धन देने का विधान किया है। इसी प्रकार गौतम के अनुसार विधवा को सपिडो के साथ उत्तराधिकारिणी माना जाना चाहिए।[15] विष्णु के अनुसार विधवा को पति की पूरी संपत्ति की उत्तराधिकारिणी माना जाना चाहिए। याज्ञवल्क्य ने विष्णु के मत का ही समर्थन किया है। मनु के अनुसार यदि पुत्र बिना संतान के मर जाए जो उसकी संपत्ति माता को मिलनी चाहिए।[16] इस विचार से प्रायः सभी धर्मशास्त्रकार सहमत हैं। याज्ञवल्क्य के अनुसार पुत्रों के जीवित होने पर माता को उनके बराबर पैतृक संपत्ति का एक भाग मिलना चाहिए। शुक्र का मत है कि माता को पुत्र के भाग का चौथाई भाग मिलना चाहिए। मनु एवं अन्य शास्त्रकार महिलाओं के लिए किसी भी स्वतंत्र क्रिया–कलाप की अनुपति के लिए तैयार नहीं हैं और उनके लिए विवाह ही उपनयन संस्कार हो गया। सती प्रथा, जौहर प्रथा परदा, प्रतिभक्ति पति एवं पवित्रता स्वाभाविक क्रियायें हो गयी।[17]

पारिवारिक महिलाओं को कठोर पराधीनता में रखने के प्रयास का चार्वाकों द्वारा विरोध किया गया और उन्होंने अन्य सामाजिक बुराइयों के विरूद्ध भी आवाज उठाई। चार्वाकों ने कहा कि लोग ईर्ष्यावश महिलाओं पर तो नियंत्रण करते हैं लेकिन पुरूषों पर नहीं।[18] तन्त्रों ने भी महिलाओं को धार्मिक प्रयोग के लिए योग्य घोषित किया और उनके सामाजिक स्तर को ऊँचा उठाया।214 उन्होंने एक निश्चित सीमा तक महिलाओं की स्वतंत्रता को बढ़ाया किन्तु जैसा कि क्षेमेन्द्र ने कहा है,215 परम्परावादी वर्ग इसे पसन्द नहीं करता था।216 ईसा की छठी शताब्दी से जिस तन्त्रवाद ने लोगों का ध्यान आकर्षित किया उसने सामाजिक समन्वय को बढ़ावा दिया और यह विचार प्रवाह का ऐसा माध्यम बना जिसमें होकर जनजातीय लोग सामंती समाज में दाखिल हुए। 217 भूमि अनुदोनों के फलस्वरूप जनजातियों का जो ब्राह्मणीकरण हुआ उससे पितृसत्तात्मक समाज में मातृसत्तात्मक तत्वों के उदय ने महिलाओं के सामाजिक–आर्थिक जीवन में सुधार एव अपेक्षाकृत स्वतंत्रता की भावना को जन्म दिया। 218 पति में निरपेक्ष भक्ति एवं वफादारी तथा मुख्यतः गृह कार्यों की देखरेख महिलाओं की पराधीनता के द्योतक थे। 219 इन प्रवृत्तियों में परिवर्तन एवं शिथिलीकरण उनके स्वतंत्रता के प्रतीक थे। विवाह एवं उत्तराधिकार के नियमों में परिवर्तन सामंती युग की प्रमुख विशेषताएं है। इस युग में भूमि का सामाजिक–आर्थिक महत्व बढ़ने लगा था और सामाजिक व्यवस्था में संकट उत्पन्न हो गया था जिससे उसका विरोध हो रहा था।

निष्कर्ष

हिन्दू समाज में स्त्री–धन नारी की सामाजिक और आर्थिक दशा की ओर इंगित करता है, जो उसकी विभिन्न अवस्थाओं से आबद्ध है। यह सही है कि स्त्री के अधिकारों को लेकर धर्मशास्त्रकारों में मतभेद रहा है। परिणामस्वरुप उनके दो वर्ग बन गये – एक उदार और दूसरा अनुदार। स्त्री के विपत्ति–काल और दुर्दिन में जब उसके सारे सम्बन्धी और सहायक किनारा खींच लेते हैं, तब उसके जीवन का संचालन उसके स्त्री–धन से ही हो सकता है। ऐसी स्थिति में पति और पिता के न रहने पर स्त्री का जीवन–यापन कठिन हो जाता है। उसे अपना जीवन चलाने के लिए अर्थ–सम्पत्ति की आवश्यकता पड़ती है जिसकी पूर्ति धन से ही हो सकती है। अतः अनेक उदारचेता व्यवस्थाकारों ने नारी को पुरुषों के समान अधिकार प्रदान करते हुए उसके सम्पत्ति–सम्बन्धी अधिकारों को स्वीकार किया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *ऋग्वेद* 1, 126, 3
2. *महाभारत*, 2, 86, 40, 2, 89, 17
3. *आपस्तब*, ध0सू0 2, 6, 14, 16–20
4. *अर्थशास्त्र* 3, 2
5. *याज्ञवल्क्य स्मृति* 2, 145
6. *कात्यायनस्मृति दायभाग*
7. *याज्ञवल्क्य स्मृति* 1, 147
8. विज्ञानेश्वर–टीका, *याज्ञवल्क्य स्मृति* 2, 145
9. *मनुस्मृति* 9, 192
10. *ऋग्वेद* 7, 4, 8
11. *वशिष्ठ धर्म सूत्र* 15, 7
12. *अर्थशास्त्र* 3, 5
13. *यज्ञावल्क्य स्मृति 2, 124, मनुस्मृति 9, 118*
14. *स्मृतिचंद्रिका पृ0 625–देवल*
15. *बृहस्पति–उद्धृत दायभाग, खण्ड द्वितीय, वृद्धमनु–उद्धृत मिताक्षरा याज्ञवल्क्य स्मृति 2, 135–36, पराशरमाधव जिल्द 3, पृ0 536*
16. *मनुस्मृति 9, 217*
17. *प्रभु, पी0एच0, हिन्दू सोशल आर्गननाइजेशन, पृ0 270, शर्मा, दशरथ, अर्ली चौहान डायनेस्टीज, पृ0 289*
18. *नैधशीयचरित, अनु0 हिन्दी की सतराह 42*
19. *दशावतराचरित, दस 29*
20. *शर्मा, आर0एस0, प्रांरम्भिक भारत का आर्थिक एवं सामाजिक इतिहास, पृ0 273*
21. *लटकमेटक, पृ0 7, शुक्रनीति, अनु0, बी0के0 सरकार पृ0 103, यादव, वही, पृ0 64।*